

पर जैनाचार्य पूज्यश्री आनन्द ऋषिपंजाब का सम्मति

पर शान्तिस्तानत्रा सेठ ने 'जागरण' अक्षोभ्यार्थ दिया । हमारा समाज के विद्वान् मुनि मधुकरजी ने श्री आचाराह सत्य के प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्ययनों में से कतिपय सृष्टियों का समन्वय करके हिन्दा अनुवादमहित होने सम्पादित किया है । वर्तमान परिस्थितियों में यह प्रयत्न महाहर्षय है । जिन भगवान् की वाणी का अधिक से अधिक प्रचार हो और उसके द्वारा जगत् में सभी शांति फैले यह वाञ्छनीय है । आशा है मुनिजी अपनी इस प्रकार की साहित्य-सेवा को भाविष्य में भी चालू करेंगे ।'

पंडितवर्य श्री गोभाचन्द्र भारिल्ल की सम्मति

आज मानव की अवस्था की लता को विनाश देने विकराल दानव ने दंगल लिया है । मनुष्य की सभ्यता स्वार्थी-मत्ता के गहरे गहरे में जा गिरी है । व्यक्तिगत और वनगत स्वार्थपूर्ति की लूणा रूपी लपटों में सर्व भूतहित की भाषना भस्ममान् हो रहा है और परमाणुबम जैसे विनाशक साधनों की छत्र छाया में स्थापक सत्यु विश्व के अस्तित्व की चुनौती दे रही है । समस्त समारूपे माह निद्रा में पड़ा है । ऐसे समय में 'जागरण' का संदेश अत्यन्त उपयोगी है । विद्वान् मुनिश्री मधुकरजी का यह प्रयाग अभिनन्दनाय है । आशा है भविष्य में वे अपनी कृतियों से साहित्य सृष्टि में महत्वपूर्ण अभिवृद्धि करेंगे ।

जागरण

[श्री आचाराङ्ग सूत्र क प्रथम, द्वितीय और तृतीय
अध्ययन क सूक्त-वाक्या का सङ्कलन]



— सम्पादक —

जैनाचार्य पूज्य श्री जयमलजी महाराज
के सम्प्रदाय के स्वर्गीय श्रद्धेय
स्वामीजी श्री जोरावरमलजी
महाराज के मुशिष्य
प०रब मुनिश्री मिश्रामलजी
महाराज (मधुकर)
न्याय-माहित्यतीर्थ



प्रथमावृत्ति
१००

}

सूत्र्य III) शाले

{

वी० ग० ४७७
मन्वन् १०६

मुद्रक
श्री चालर्सिड के प्रबन्ध से
श्री गुरुदेव प्रि० प्रेस वावर में मुद्रित

समर्पण



जिनकी कृपा से आत्मकल्याण के
पथ पर अग्रसर हुआ
उन्हीं श्रद्धेय पूज्य गुरुवर
श्री जोरावरमलजी महाराज के
कर-कमलो मे
श्रद्धा का यह प्रथम प्रसन्न
समर्पित है ।

मिनीत—

मधुकर



सम्पादकीय निवेदन

सन् १९९६ में मेरा चातुर्मास मेढ़ता में था। उत दिनों मद्रास से प्रो० इन्द्रचन्द्रजी का एक पत्र मिला। उस में साहित्यिक प्रवृत्ति के लिए प्रेरणा थी और साथ में कुछ सुझाव भी।

प्रोफेसर माहय से मेरा पुराना परिचय था। विद्यार्थी-जीवन के कई प्रीप्मावकाश उन्होंने मुझे पढ़ाने में व्यतीत किए थे। उनकी विद्वत्ता तथा सूझ से मैं तभी से प्रभावित था। मद्रास वाले पत्र की बातें पते की थीं। ये मेरे हृदय में जम कर बैठ गईं। तभी से इस ओर प्रवृत्ति करने के लिए बराबर सोचता रहा।

मेरे उत्तमान गुरु महाराज स्वामीजी श्री हजारीमलजी महाराज मुझे इस कार्य के लिए सदा प्रेरित करते रहे हैं। मने दश वर्ष की अवस्था में समय ग्रहण किया। पाच वर्ष बाद मेरे श्रेष्ठ गुरुवर स्वामीजी श्री जोरावरमलजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद वर्तमान गुरु महाराज ने ही मेरा पुत्र के समान पालन किया। अपने कष्टों की परवा न करके उन्होंने मेरे अध्ययन के सभी साधन तथा सुविधाएँ प्रस्तुत कीं। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि मेरे विकास की चिन्ता जितनी उन्हें रही है और अब है उतनी मुझे भी नहीं है। उनकी वात्सल्यपूर्ण छत्र छाया मेरे लिए

(ज)

सब से बड़ा सहारा है। प्रो० इन्द्रजी के पत्र ने जो बीज बोया था गुरु महाराज की प्रेरणा से वह दिन प्रति दिन अंकुरित होने लगा ।

फिर भी अनुभव न होने के कारण मुझे काय प्रारम्भ करते हुए सकोच हो रहा था । प्रारम्भिक सहायता के लिए इन्द्रजी से फिर पत्र-व्यवहार किया गया, इस वृत्ति में वे मद्रास से वीकानेर और वहाँ से मिथानी कालेज में चले गए थे ।

सन् २००३ में हमारा चातुर्मास देह (मारवाड) में हुआ । वहाँ दशहरे की खुशियों में वे मुझे देह में मिले । उस समय विचार-विनिमय के बाद काय को प्रारम्भ कर देने का निश्चय हुआ । प्रोफेसर साहबने इस काय के लिए प्रीप्माथ-काश मेरे पास प्रिताना मजूर कर लिया । वे सन् १९४७ की १६ जुलाई को कुचेरा आए और पंद्रह दिन में ही यह समग्र तैयार हो गया ।

इस समग्र का नाम 'जागरण' है । इस में आचाराग सूत्र के सूक्त वाक्यों का अपने ढंग से सकलन किया गया है ।

आचाराग सूत्र दो धृतस्कन्धों में विभक्त है । पहले धृतस्कन्धों में नौ अध्याय हैं । यहाँ उसके प्रथम, द्वितीय व तृतीय अध्याय में आए हुए सूत्रवाक्य सकलित किए गए हैं ।

पुस्तक समाज के लिए कहीं तक उपयोगी बनी है, इस का निणय तो पाठक स्वयं करेंगे । मैं सिर्फ अपना उद्देश्य स्पष्ट कर देना चाहता हूँ ।

(ॐ)

भगवान् महावीर की वाणी व्यक्ति तथा समाज के उथान के लिए महत्त्व-पूर्ण स्थान रखती है। उसे जनता के सामने रखने के लिए कई प्रकार के प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं। आगमादय-समिति तथा बहुत-सी दूसरी संस्थाओं में शास्त्रों का प्रकाशन हुआ है परन्तु फिर भी हमारे शास्त्र साधारण जनता की चीज नहीं बने। गृहस्थ लोग बृहत्काय शास्त्रों को या तो खरीदते ही नहीं, यदि खरीद भी लत हैं तो प्रायः उन्हें किसी साधु या साध्वी के उपयोग के लिए अलमारी में रख छोड़ते हैं। वे उन्हें स्वयं पढ़ने का साहस नहीं करते। साधु-साध्वी भी संस्कृत-प्राकृत जानने वाले बहुत थोड़े हैं। वे प्रायः उस ओर प्रवृत्त नहीं होते।

इस लिए हमारा विचार हुआ कि यदि शास्त्रों के सुन्दर उपदेशों का शुद्ध हिन्दी अनुवाद के साथ छोटी छोटी पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाय तो यह सभी के लिए काम की चीज बन जायगी। जैन, अजैन, साधु तथा धायक सभी इस में लाभ उठा सकेंगे। इसी भावना को सामने रखकर हमने इस प्रकार के साहित्य को प्रकाश में लाने का विचार किया है।

हमारी इच्छा है कि यह प्रकाशन सर्व-साधारण की अधिक से अधिक सेवा करे। इस के लिए जो सज्जन हमें किसी प्रकार का परामर्श देंगे हम उनसे आभारी होंगे। भविष्य में उस परामर्श पर पूरा ध्यान रखा जायगा। हमारा पाठकों से निवेदन है कि वे इस विषय में अपनी सम्मति अवश्य लिखें।

(ब)

समाज को कैसे साहित्य की आवश्यकता है, यह एक टेढ़ा प्रश्न है। इस का उत्तर यही है कि समाज व सयोनोमुग्री विकास के लिए सभी प्रकार के साहित्य की आवश्यकता है। किंतु वह साहित्य स्वयं स्वस्थ होना चाहिए। रोगी साहित्य स्वस्थ समाज का निर्माण नही कर सकता। हमारे समाज में साहित्य सम्बन्धी जा प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, उनमें इस बात की ओर बहुत धम ध्यान दिया जा रहा है।

हमारा प्राचीन साहित्य अत्यन्त समृद्ध है परन्तु नयीन साहित्य अभी नहीं के समान है। जो कविता या कहानियों की पुस्तकें अभी तक हमारे समाज में प्रचलित हैं उनमें से बहुत धम उत्तम साहित्य की धरणी में आ सकती है।

म समस्याओं तथा विद्वानों का ध्यान इस ओर खींचना चाहता हू कि ये समाज म अपनी अपनी रुचि तथा सुविधा के अनुसार सभी प्रकार का स्वस्थ साहित्य तैयार करने का प्रयत्न करें।

अन्त में जिन महानुभावों ने मेरे इस सम्पादन के काय म सहयोग लिया है म उनका हृदय से आभार मानता हूँ और उनकी इस सहृदयता के लिए कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

रक्षाधेन
संवत् २००६
(तीसरी बारवाड़)

}

मुनि मधुसूत जैन

भूमिका



मनुष्य इन्द्रिया का गुलाम है। वासनाओं का दास है। वह अपनी उद्दाम लिखावा का पूरा करन के लिए हरे भरे उद्यानों का रोगेस्तान बना देता है। गहनचुम्बा प्रासादा की भूमिमात् कर देता है। समृद्ध शाली नगरों का शमशान बना डालता है। सभ्यता संस्कृति और धर्म का गला घोट देता है। सुख एवं आमोद-प्रमोद में पुलकित गर्वों को शून्य कर डालता है। लालशों से पट हुए धरातल को दमकर बह अट्टहास करता है। कण्ठ चीन्कारों की मन कर मन हा मन प्रमत्त हाता है। वह अपना विजय पर मतवाला होकर नाचन लगता है।

किन्तु यह नशा अविक्र समय तक नहीं रहता। वास्तविकता का प्राप करते ही उसे अस्मा विजय अस्तरने लगती है। मन में एक लौखी चुभन-मी होती है। उस अचानकिए पर पक्षबाध होता है। अपना लगाद हुई आग में वह स्वयं जला लगता है। उस समय वह अपने को कितना अमहाय कितना निबल, कितना दान कितना दुखा पाता है? अपनी हुकार से भाषण दुर्गों की कम्पित करने वाला वह अभिमानी अपने का समार में सब से अधिक होन मानता है। वह अन्दर ही अन्दर रोता है।

ऐसा क्यों है? वह कानशा शक्ति है जो उसे दबोच गलती है? दुर्गों का उगार हम उनकरी बाणा में मिलता है जो अविचल हान पर भा महापुरुष कहे जाते हैं। जो उबरु सबर हान पर भा स्वामा कहे जाते हैं। वे दूसरे को मारकर महावीर नहीं बनन किन्तु मार खाकर महावीर बनते हैं। वे दूसरे का कष्ट देख कर मुर्खा नहीं बनन हे, किन्तु दूसरों के कष्ट उठाकर स्वयं

गरी बनत हैं । व किमी सान्ना व प्रेमी नगी बनत किन्तु ग्गस्य अर्नि
 कान निग प्रेमी बनते हैं । दुमरी व भाजन के लिए व स्वय इ मन बन जाते
 हैं । दुमर घर को प्रकाशित करने का स्वय यती बन जाते हैं ।

जरी वागी म न ता शब्दादन्तर हाता ह न तार्किकीया छानबीन
 आर न वैचारणोंमी मायालारा वा मारामारी । व ता गीधी-गारी भाषा
 में मय कुछ कह जानत है । उगन न रिमी प्रकार की कृतमता हीनी ह आर
 न ज्ञावः ।

शब्द-शास्त्र व पाण्यत फट मरते हैं उनकी बातों म पुनर्गति ह
 अमभवः ह अमन्कार ह । किन्तु यह उतरी आना बात ह । व अपनी आँसों
 पर लग रगान काच में म सब कुछ दग्ना रागत हैं । अपने पामग बान
 नगनू पर सब कुछ लालना चाहते हैं । मूर्ख व प्रकाश को छुड़ कर अपने
 निमित्तने गी म गमस्त भूमगत्र की प्रकृष्ट कृता चाहत हैं । वास्तव में
 देया चाव ता पुनर्गति ग ही के लिए गय ह आ किमी एक वस्तु पर टिकना
 नहीं जानते । पिन व प्रेमा हागे का अर्थ ह नग नग पात्र स्वोचना । वे वस्तु
 के अन्तनिहित उम मांथ्य को नहीं देख पात ता एक हाते पर भी मग
 नमान ह ।

कीदल की कुछ गता नहीं कर मे वैनी ही ह । फिर भा कह हमारे
 लिए प्रतिक्षण न ह । हम अपने प्रेम पात्र का एक ही शब्द बार-बार सुनना
 चाहते ह । पत नहीं गया का सुन्यर किगों मंगथम कब चमरी थी किन्तु
 तर से अच तस वैनी हा हें फिर भी न ह । सय का प्रकाश रिचनी का
 चक्र मर्षों का गजन नरी का धारा वा की आँनी गभी वैमे ही ती हे
 चमे आदि कान मे य । उम इगरी पुगने पड़ गए ? उनम नवानना प्रय भी
 अनुगण है ।

शाश्वत स्वयं का प्रकाशित करने वाला सना की बाणी भाँसा प्रकार सदा नई है। एक ही बात बार-बार कहने पर भी उसका सात्त्विक कम नहीं होता। पुनरुक्ति के समान प्रार्थनाता भाँसा उनके सान्द्र्य का कम नहीं कर सकता। वह प्रार्थना होने पर भाँसा सदा नवान है।

भगवान महावार अहिंसा के प्रवर्तक थे और पुनारी भाँसा। वे स्वयं ही मूर्तिकार हैं स्वयं ही हम के प्रतिष्ठापक और स्वयं ही पुनार।

भगवान् न देखा लाग अज्ञ स्वार्थ का पूर्ति में लगते हैं। इसका लिए वे दूसरे को कुछ दान हुए या नष्ट करने हुए भाँसा नहीं हिनकत। इस प्रकार स्वार्थों का परस्पर संबंध प्रारम्भ हो जाता है। परिणामे स्वयं को भी सुखा नहीं रह पाता है। सुखा होने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य किसी को कुछ न दे। अपने स्वार्थ के लिए कोई किसी का हान न पहुँचाए। यही म अहिंसा का प्रारम्भ होता है।

इसी का पूरा साक्षात्कार करने के लिए भगवान् न रात्रिभय छोड़ दिया। मित्र-व्याज आदि अन्य पशुआ से भरे हुए जंगल में समाधि लगाई। ब्रूकमा हिंसक लोग में विचरण किया। सभी प्रकार के कर्षों को सहा किन्तु मन का विचलित न होने दिया। कानों में कील ठोकने वाले शिमान का भाँसा अपना निकट सम्बन्धी माना।

घारे घारे उन्होंने देखा कि हिंसका का हृदय पलट रहा है। जो उन्हें मारने दौड़ते थे वे अब परों में लोट रहे हैं। जो उन पर कोर करने थे वे अब शान्त और अहिंसक बन गए हैं।

यह हिंसा पर अहिंसा का विजय था। राक्षसा वृत्तियों पर देव शक्तियों का विजय थी। इस विजय का कारण भगवान् की परम सदा आत्म शक्ति थी। इसका लिए सना आदि कितना हिंसक साधन का नहीं अपनाया गया।

इसने माय भगवान् ने एक बात और दखा । वह था त्रिवारा का सघर्ष । एक व्यक्ति दूसरे को भुंटा कहता है और दूसरा पहने का । इस प्रकार जाना नष्ट पहने है । वस्तुतः दखा जाय तो न होना मन्चे हैं किन्तु उनका ही एकाग है । अपनी अपनी जगत् स जनों सन्चे हैं । इस प्रकार स्याद्वाद की स्थापना हुई । इस को बार्दिर अहिंसा भी कहा जा सकता है ।

मय अर्थात् अपरिग्रह आदि जितने मत हैं वे एक दृष्टि से अहिंसा के ही पोषक हैं । अमन्य मोलक मनुष्य दूसरे को मारता देता है जा हिंसा का एक रूप है । चारी से भा दूसरा का काट जाना है । किसी भी वस्तु पर अपना अधिकार जमा कर बैठ जाना तथा दूसरे को अस वाशेन रखा परिग्रह है । यह भा हिंसा ही है । सार्वजनिक उपयोग की वस्तु पर एकारिण्य जमाना भा हिंसा है ।

भगवान् मन्वार ने आहमा का विस्तार करने हुए इन मय जनों का ध्यान म रखा । इसलिये पंच महाजन बनाए ।

जो माधु के उग्र माग पर नहीं चल सकते उनके लिए धावकधर्म बनाया ।

प्रस्तुत पुस्तक आचार्यग सून के प्रथम द्वितीय व तृतीय अध्यायना के वाक्यों का सग्रह है । इसमें जो उपदेश दिया गया है वह सारु तथा सभी के लिए प्रेरक व स्फूर्तिदायक है ।

पुस्तक में वाक्या का क्रम बना नहीं है जो मूल-सून म है । उही वाक्यों का छह प्रकण्या में बां दिया गया है । जो वाक्य निम प्रकरणा में उचित जान पड़ा उसे वहीं रखा गया है । वाक्यों के रस अलंकार के लिए नेमक चम्य ही नहीं है प्रशमनाय भा है । उसने समान के सामने एक उग्र धीमी गणनीय रखा है । इस पद्धति के द्वारा हम आगम मोहित्य का जना

सामने अधिक आकर्षक एवं सुखी पूरा ढंग से रख सकते हैं। प्रचार एवं प्रयोगिता की दृष्टि से भा यह पद्धति अनुकूल है।

अपना सस्त्रुति तथा साहित्य के प्रति श्रद्धा होना समाज के जीवन का चिह्न है। अपने महापुरुषों का सम्मान करना तथा उनके जीवन एवं कार्यों से स्फूर्ति प्राप्त करना किसी भी दृष्टि से बुरा नहीं कहा जा सकता। किन्तु वह श्रद्धा सजीव होनी चाहिए। जन्ममें विक्रम तथा सस्कार की गुंजायमान होनी चाहिए। निर्यात श्रद्धा तो समाज को मृत्यु की ओर ले जाती है। अपने कामों में पूरा श्रद्धा रखत हुए हम जन्ममें विक्रम करना चाहिए। उन्हें नष्ट करने के लिए उपयुक्त बनाना चाहिए। जन्मका अर्थ यह नहीं है कि हमें उन्हें नष्ट करना चाहिए। आगमों में जो शिक्षाएँ हैं वे तो शाश्वत सत्य हैं। उनका अर्थना आवश्यकता दो हजार वर्ष पहले थी उतनी ही अब भी है और उतनी ही दो हजार वर्ष बाद भी रहेगी। जब तक अधकार हैं, प्रकाश की आवश्यकता नहीं मिट सकता। जब तक मानव हृदय और उसके साथ उसकी उलझनें लगाए हैं तब तक सत्य प्रदर्शन के लिए सन्त वाणा का आवश्यकता रहेगा ही। किन्तु उस वाणी का इस रूप में रखना चाहिये जिस से नई जन्मनाल भा लाभ उठाव।

समाज में सबसे अधिक चाइन्ति का प्रचार है। इसका मुख्य कारण यही है कि दुनिया में किसी कोइ सभ्य भाषा नहीं है जिसमें उसका अनुवाद न हुआ हो। दूसरा कारण यह है कि वह नान-नान रूपों में जनता के सामने आता है। हम भी चाहिये कि आगम साहित्य को नान नान रूपों में जनता के सामने रखें।

शत्रु युद्ध ने वैज्ञानिक सभ्यता का दिवाला निकाल दिया है। उसने सभ्यता और सस्त्रुति की र्हांग हाकने वाले राष्ट्रों को पशु से भी बुरा बना दिया। मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बना दिया। इस समय समस्त समाज

का एक ऐसे पथ का आवश्यकता है जो पुनः शान्ति का आरंभ लाने का विध्वंस-व्युत्पत्त तथा प्रेम का पाठ पढ़ा सके जो मनुष्य को पशुत्व से ऊँचा उठा कर देव बना सके। यह अहिंसा द्वारा ही सम्भव है। यह जैन दर्शन के लिए आग आन का समय है। यह माँका है जो जैन अपनी सम्भ्यता और सस्कृति का प्रचार करना चाहिये। इस समय जन समाज को समस्त विश्व में अहिंसा का मंगल लहराना चाहिए।

किन्तु यह बात स्थानक से बैठ कर पुरानी लकीर पढ़ने से न होगी। इस समय एक ओर हमें अपना परिष्कार करना चाहिये दूसरी ओर जनसम का मूल सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहिए।

हम देख रहे हैं कि समाज में ऊपरी बात पर जितना ध्यान दिया जा रहा है उतना मूल बातों पर नहीं। जितना लक्ष्य बाध्य किया जा रहा है उतना आत्मशुद्धि पर नहीं है। भगवान् महात्मा का माला फेरन का जितना ध्यान रखने है उतना उनके आदेश पर चलने का नहीं रखते। थोड़ा चिंतारने तो है किन्तु उनका अपना आत्मा के साथ मिलान नहीं करते। कर्मावधि पर बहुत कम ध्यान देने हैं। इस प्रकार शास्त्रों का पूना दोनों हाथ जोड़कर करना है उनकी शिक्षाओं का जीवन में उतार कर नहीं।

दुनिया के सामने जनसम का आदेश रखने के लिए हमें स्वयं आदेश बनना होगा। तभी शास्त्रों की सजाव पूजा हो सकेगी।

विद्वान् पूज्य श्री मिथालालजी महाराजने शास्त्रों का बाता को सर्वसुलभ बनाने के लिए जो यह प्रयत्न किया है वह प्रशंसनीय है।

आशा है मुनि श्री अपने प्रयत्न को जारी रखेंगे।

रत्नाचरण १००४
इन्द्रलोक भिवानी

इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम० ए०
अध्यक्ष, सस्कृत तथा हिन्दी विभाग
वैश्य कालेज, भिवानी

जागरण

विषयानुक्रम

न	नाम	पृष्ठ
१	—नागरण	१-१६
२	—आवत	१७-३४
३	—महारीधि	३५-४६
४	—मुनियर	४७-६६
५	—वियरु	६७-६८
६	—मुक्ताहार	६९-७८

जा ग र रा

श्री आचाराङ्ग-सूत्र के प्रथम श्रुतस्वघ के प्रथम, द्वितीय
और तृतीय अध्ययन में से मफलित
अकारादि अनुक्रमणिका

			अध्ययन	उद्देशक
अणुगारे	(महा०)	१	१	३
अणुष	(इमु)	६	३	३
अणुणण	(महा०)	१३	०	०
अणुगचिते	(आव)	६	३	५
अणुहतरा	(मुक्ता०)	१	५	३
अणुसमाणे	(महा०)	५	२	५
अणुदा	(महा०)	१५	२	५
अणुमतो	(मुक्ता०)	१४	३	१
अणु च स्वजु	(आव०)	१३	२	१
अणुद	(मुक्ता)	४	२	५
अणुवरेण	(विवक)	१५	३	३
अणुवि स	(जाग)	१४	३	२
अणुवि	(मुक्ता)	२	०	६
अणुदा य राधो	(आव)	८	२	५
अणुवगुरो	(मुनि०)	७	३	३
अणुवय	(विवे०)	३	०	५
अणुवाराण	(मुक्ता०)	१५	३	५
अणुवर्ता	(विवे०)	६	२	१
अणुवभज	(विवे०)	६	३	१
अणुवैवित्त	(विवे)	७	३	१
अणुव घ	(जाग)	०	०	१

[घ]

हृत्	(घ्राव०)	१५	०	१
इणमव	(विव०)	०	०	३
उरेभो	(मुक्ता०)	६	०	३
उम्मुच	(जाग)	१३	३	०
उवराव	(हेमुनि)		३	०
उवाइय	(घ्राव०)	६	३	६
एग	(घ्राव०)	५	३	५
एग पाग	(हेमुनि०)	१	५	५
एसमरणा	(महा०)	१०	३	३
एग वीर	(मुक्ता०)	३	०	
कम्म च	(जाग०)	१२	३	३
का अगद	(हेमुनि)	८	३	३
कामा	(विव०)	८		५
किमिन्य	(मुक्ता०)	१५	३	५
कहाद	(हेमुनि०)	६	३	५
कैयं वागगाय	(हेमुनि)	५	३	०
कामण	(घ्राव०)	१	५	५
कर्मण	(हेमुनि०)	१०	३	३
कर्मिण	(जाग०)	८	३	१
कहा पुगम्म	(विदे०)	१०	०	६
काइ च	(जाग०)	११	३	०
कर्मिणु	(घ्राव०)	१०	०	१
काव	(घ्राव०)	१४	३	१
कर्मि	(घ्राव०)	६	०	१
कर्मि	(विदे०)	१०		६
किण	(मुक्ता०)	१०	३	६

[न]

नेत्रग नामे	(मुक्ता०)	१२	३
जे कोद	(आप०)	४	३
जे गुण	(आप)	१	१
जे गुणे	(आप)	१	
ने म्मा	(मुक्ता)	५	०
नेर्ह	(आप०)	११	०
न नागिना	(मुक्ता०)	१	३
न दुम्ब	(त्रि)	५	०
गिन्वद	(हेमुन)	३	३
तुममव	(मुक्ता)	०	३
तम्हा	(जाग०)	१५	३
त परेक्षाय	(नाग०)	४	०
त परिगणाय	(आप)	१	
त परिगिन्म	(त्रि)	१३	२
दुम्बु	(महा)	१४	
दुह्या	(महा०)		०
दुह्यी	(मुक्ता०)	१६	३
न इच गरा	(त्रि)	११	
नान्य कानम्भ	(त्रि)	१	०
नाइय	(त्रि)	१८	३
नारद	(नाग)	५	
निउभागन्ना	(आव०)	१६	१
गामिद	(जाग०)	१०	३
पुरिमा	(नाग)	१३	३
गत	(महा०)	३	२
मदु ध	(नाग)	१६	३

बाल	(विव)	१४	२	
बाग	(मुक्ता०)	७	२	३
भाङ्गि	(विने)	१	२	३
लद्रे	(मन्दा०)	७	२	४
नाभुल	(महा०)	८	२	५
लायल	(जाग)	७	३	१
रिणावि	(महा०)	३	२	६
रिमुता	(महा०)	२	२	२
रिगल	(जाग०)	१८	३	३
म	(हे मुनि०)	५	२	६
मनुष्टि	(महा)	४	२	५
मन्वया	(मुक्ता०)	११	३	४
मन्था	(हे मुनि)	६		३
मिग	(विव)	६	२	६
माथ्यागणदि	(महा)	१२	३	५
मुला	(जाग)	१	३	५
ग अयवु	(विव०)	६	२	३
ग अयव	(थाव०)	३	२	३
ग आयव	(जाग०)	६	३	५
ग व व	(जाग०)		२	५
गे त	(हे मुनि०)	११	२	५
गे न	(हे मुनि०)	१३	२	६
गे मम	(ता०)	३	२	५
गे वता	(महा०)	११	३	४
मधि	(जाग०)	१७	५	



श्रीमान् तेजमलजी साहिव पारख



आप तीवरी (मारवाड) के एक बहुत अच्छे प्रतिष्ठित
और भद्र प्रकृति क मज्जन पुरुष हैं । आपने हम
पुस्तक के प्रकाशन म २००) रुपया की
महायत्ता भी है एतदर्थ धन्यवाद ।

卐 गमोत्थु ण तस्म समणस्स भगवञ्चो महावीरस्स 卐

॥ १ ॥

जा ग र ण

“सुत्ता अमुणी
मुणिणो सया जागरति”



(१)

सुत्ता अमुणी ।
मुण्णिणो मया जागरति ।

(२)

आम च छत्त च विगिच धीरे !
तुम चेत्त त मल्लमाहट्टु ।

(३)

जेण मिया तेण णो मिया ।
इणमेत्त नानजुक्कति जे जणा मोट्ट-पाउडा ।

(४)

धीभि लोए पच्चहिए ।
ते भो वयति " एयाड आययणाट्ट "
से टुक्काए, मोहाए, माराए,
नरगाए नरग-तिरिक्काए ।

(१)

सोने वाले मुनि नहीं होत,
मुनि तो सदा जागते रहत हैं ।

(२)

ओ धीर पुरुष !

भोगों की आशा और लालसा छोड़ दे । तू स्वयं इस काम
को लम्बे दुःखी हो रहा है ।

(३)

तुम निजमे सुख की आशा रखते हो, वस्तुतः ये सुख के
कारण नहीं हैं । मोह में घिरे हुए लोग इस बात को नहीं समझते ।

(४)

सारा समाज स्त्रियाँ के प्रति अपनी आनक्ति के कारण दुःखी
है । परिवार के मोह में फँसे हुए लोग कहते हैं कि स्त्री-आदिक
परिवार सुख का साधन है परन्तु वास्तव में देखा जाय तो यह
सब दुःख, मोह, मृत्यु, नरक और नीच गति (पशुयोनि) का
कारण है ।

(५)

मयय मृदे धम्म नाभिजाणड ।

(६)

उदाहु वीरे अप्पमात्रो महा-मोहे ।

अल कुमलस्म पमाएण ।

सति मरण मपेहाण ।

भेउरधम्म मपेहाए ।

नाल पास अल ते ण्णहि ।

(७)

से मम्म परिन्नाय मा य हु लाल पञ्चामी ।

मा तेसु तिरिच्छ-मप्पाण-मावायए ।

राम रामे गलु अय पुरिमं ।

उहु मार्त्त ऋडेण मूटे ।

पुणो त क्खेड लोह वंर वड्ढेड अप्पणो ।

जमिण परिक्खिज्जत्त इमस्म चेत्त पडिबूहणयाए ।

अमरायड महामड्डी अट्टमेय तु पेहाए ।

अपरिणयाए क्खइ ।

(५)

विषया म आमक्त मूढ मनुष्य आत्मशांति के कारण भूत वाग्विद्वान् धर्म को कभी नहीं पहचानता ।

(६)

भगवान् महावीर न कहा है कि धीर पुरुष स्त्री तथा दूमरे विषयों के महा-मोह में सदा मारवान् रहे । कुशल व्यक्ति कभी प्रमाद न करे । शांति के साथ मरण का स्वीकार कर । इस शरीर का नश्वर समझे । सभी सामाजिक सुख अधूर है अतः इनमें अलग रह ।

(७)

वृद्धिमान पुरुष ममार के स्वरूप का वास्तविकता को पहचान कर इस प्रकार उमका परित्याग कर ने नैस धूर कर उम फिर चाटा नहीं जाता । ज्ञान दशन आदि में उन्मीनता न रखे । पुरुष म्ना यही मोचता रहता है कि मने यह कर लिया और अत्र यह करूंगा । इसके लिए वह विरिध प्रकार न माया जाल रचना रहता है । विरिध कार्या के मोह में फँसा रहता है । नार नार लोभ परता है और अपनी ही आत्मा के साथ शत्रुता प्रढाता है अथान अपनी ही हानि परता है । मंयम आदि का वृद्धि के लिए ही मैं यह बात बार-बार करता हँ ।

कामभोगा में श्रद्धा रखने वाला मनुष्य देवताआ का अनुकरण करता है । किन्तु नेत्रता भा अपाधियों से घिरे रहत हैं अतः यह जान कर उस और रुचि न करना चादिण । जो व्यक्ति इस बात को नहीं जानता, वह दुःखों में फँस कर रोता रहता है ।

(८)

त पग्निनाय मेहारी विडत्ता लोग
 प्रता लोग-मन्न मे मदम परम्बमिज्जामि ।

(९)

नारड महण वीरे, वीर न महण रड ।
 जम्हा अग्नीमणे वीर, तम्हा वीर न रज्जड ॥

(१०)

मे ज च आरभे ज च नाऽऽरभे ।
 अणारद्ध च न आरभे क्षण क्षण-
 परिणाय लाग-मन्न च मव्यमो ।

(८)

यह जानकर बुद्धिमान पुरुष लोभ-म्वभाव को न भूले तथा लौकिक ग्पणाओं का त्याग करके समय में परात्म करे अर्थात् समयमशील बने ।

(९)

वीर पुरुष समयमानुष्ठान से कभी विरक्त नहीं होता और न विषयभोगा भ गति करता है । वह न फभा उन्मत्त होता है और न कभी श्चामक्त ही ।

(१०)

वह मृमुबु तिन समय श्चान्ति काया का अनुष्ठान करता है और तिन मिथ्यात्व श्चान्ति का परित्याग करता है, दूसरे यक्तियों को भी उन काया को करना चाहिए अथवा उनका परित्याग करना चाहिए । प्रतिलक्षण लोभम्वभाव का ध्यान रखकर गेमा कोड काय न करें तिमि तीथङ्करो या महापुरुषा ने न किया हो ।

(८)

त परिश्राय महाती विडत्ता लोम
 घता लोम-मन्न मे मडम परक्कमिआमि ।

(९)

नारड महण वीर, रीर न महण रड ।
 जम्हा अरीमणे वीरे, तम्हा रीरे न रअड ॥

(१०)

मे ज च थारभे ज च नाऽऽरभे ।
 अणारद्ध च न थारभे छण छण-
 परिणाय लोम-मन्न च सव्वतो ।

(८)

यह जानकर बुद्धिमान् पुष्प लोक-स्वभाव का न भूल तथा लौकिक लक्षणाश्चा का त्याग करके समय में पराब्रह्म कर अज्ञान समयमशाल बने ।

(९)

वीर पुष्प समयमातुष्ठान से कभी विरक्त नही होता और न विषयभोगा म रति करता है । वह न नही गम्यमान होता है और न कभी आसक्त ही ।

(१०)

वह मुमुक्षु जिन समय आन्ति काया का अनुष्ठान करता है और जिन मिथ्यात्व आन्ति का परिहाण करता है दृमर व्यक्तियों को भी उन काया को करना चाहिए अथवा उनका परिहाण करना चाहिए । प्रतिक्षण लोकस्वभाव का ध्यान रखकर न कौन कार्य न करें जिसे तीर्थाङ्कुरों या महापुष्पों न न दित्तो है ;

(११)

लायमि जाण अहियाय दुवग ।
 ममय लोगम्म जाणिता,
 इय मत्थोरण ।

(१२)

जम्मिमे मदा य, म्हा य, रमा य, गहा य,
 कामा य, अभि—ममआगया भवति,
 मे आयय, नाणव, वेयय, धम्मय, उमय,
 पन्नाणेहि पग्गियाणइ लोय
 मुणी ति तु च्चे धम्मविऊ उज्जु
 आयट्ट-मोण मग-मभित्ताणइ ।

(१३)

पामिअ थाउरिण पाणे
 अप्पमत्तो परिव्वण ।

(१४)

रम्म च पडिलेहाण—
 वम्म-मूल च ल छण,
 पडिलेहिअ सच्च ममायाय
 दोहिं अतेहिं अदिस्समाणे ।

(११)

इस बात को ठीक समझो कि ससार में दुःख देना किमा क लिए हितकर नहीं है । ससार के सभी प्राणियों को एक समान जान कर मनुष्य को हिंसा छोड़ लेनी चाहिए ।

(१२)

जो शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श रूप त्रिविध त्रिपयों का पहचानता है, वही आत्मज्ञान, ज्ञानी, शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा तथा ब्रह्मनिष्ठ है । वही अपने उत्तम ज्ञान के द्वारा लोभ के वास्तविक स्वरूप को पहचानकर मुनि कहलाता है । वहाँ ज्ञाना, धर्मवेत्ता तथा सरल माना गया है और वही ससार तथा त्रिपयों के बंधन को भलीभाँति जान लेता है ।

(१३)

मनुष्य को चाहिए कि वह ससार क सभी प्राणियों को दुःखी समझ, प्रमाद का त्याग करके मयम को अद्बीकार कर ।

(१४)

कर्मा के स्वरूप को जानना चाहिए और कम-बन्ध के मूल कारण हिंसा को समझना चाहिए । इन दोनों को अच्छी तरह जानकर दोना का परिहार करना चाहिए ।

(१५)

नाइ च वृद्धिं च इहञ्ज ! पाम ।
 भृण्णिं जाण पडि-लेह माय ॥
 तम्हा इ-विञ्जो 'परम' ति न-चा, ।
 सम्मत्त-दमी न करेइ पाव ॥

(१६)

उम्मु च पाम इह मच्चिण्णिं ।
 थारमनीवी उमपाणु-पस्सी ॥
 थामेगु गिद्धा निउय फरति ।
 समिचमाणा पुणरिति गन्म ॥

(१७)

अत्रि मे हाम-मामञ्ज,
 ' हता नदी' ति मघड ।
 अल बालस्म सगेण,
 वेर बड्ढ्इ अण्णो ।

(१८)

तम्हा इ-विजो 'परम' ति नचा,
 आयरु-दमी न इरेड पात्र ।
 अग्ग च मूल च निगिंच धीरे ।
 पलि-छिदियाण निक्कम्म-दमी ।

(१९)

बहु च एलु पाव-कम्म पगड ।
 सच्चम्मि धिइ कुव्वह ।
 एत्थोवरण मेहावी-
 मव्व पाव-कम्म भोसेइ ।

(१३)

इसलिए विद्वान परम-तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त भयातुर होकर कभी पाप नहीं करता ।

श्री धीर पुरुष !

कम ज्ञान के सभी कारणों को छोड़ दे । सयम द्वारा राग द्वेष आदि कर्मजन्म के कारणों का नाश करके आत्मा को कम रहित बना ।

(१६)

समार म चारों ओर कर्मा का जाल फैला हुआ है । इस लिए सयम की शरण लेकर धैर्य धारण करो ।

जो बुद्धिमान सयम अस्वीकार कर लेता है वह पाप कर्मा को भस्म कर डालता है ।

(२०)

हे जीव !

आत्मा पर कर्मा का परदा पडा हुआ है । निमल अभ्य उसाय तथा जन्म-जन्मान्तरा के सुकृतों में क्षण भर के लिए जन्म परदे में छिद्र हा गया है । तुम्हें आत्मा का धुन्धला दर्शन हो रहा है । अब प्रभात मत कर । जैसा तू अपने आपको सम मता है वैसे ही दूसरों को भी समझ । प्राणियों की हिसा न ता रख्य कर और न दूसरों का करने के लिए प्रेरित कर ।

(१८)

तम्हा इ-विजो 'परम' ति नद्या,
 आयरू-दसी न रुरेड पाव ।
 अग च मूल च विगिच धीरे !
 पलि-छिदियाण निरुम्म-दसी ।

(१९)

रहु च खलु पाव कम्म पगड ।
 सच्चम्मि धिइ कुब्बह ।
 एत्थोरण मेहावी-
 सब्ब पाव-कम्म भोतेड ।

(२०)

* सधिं लोगस्म जाणित्ता ।

आयथो रहिआ पास,

(२१)

मुमुक्षु पुरुष रूप आदि इन्द्रिय-विषयों से विरक्त रहे । वे विषय चाहे दिव्य (अलौकिक) हा या मानुष (लौकिक) ।

(२०)

ससार के आवागमन को जानने वाला तथा राग और द्वेष से रहित मनुष्य न किसी के द्वारा छेदा जा सकता है, न भेदा जा सकता है, न चलाया जा सकता है और न मारा जा सकता है ।

(२३)

हे भव्य पुरुष ! आत्मा को यश में कर । इस प्रकार तू दुःखा से छूट जायगा ।

हे पुरुष ! सत्य को पहिचान । जो बुद्धिमान् मर्त्य की आज्ञा पर चलता है वह ससार-सागर को पार कर जाता है । ज्ञान, चारित्र आदि से युक्त वह पुरुष * श्रुत और † चारित्र रूप धर्म स्वीकार करके चारों ओर श्रेय अर्थान् आत्मफल्याण को देख लेता है ।

* धृतधर्म --अथ उपाग आदि आगम ।

† चारित्रधर्म --इन्द्रियसयम तथा मत्पालन आदि क्रियाएँ ।

(२१)

विराग रूपेहि गच्छेज्जा-
महया खुट्टएहि य ।

(२२)

आगड गड परिणाय-
दोहि पि अतेहि अदिस्समाणेहि,
से न छिज्जइ, न भिज्जइ,
न डज्जइ, न हम्मइ,
कचण सच्च-लोए ।

(२३)

पुरिसा !

अत्ताणमेव अभिण्णिगिज्ज,
एय दुक्खा पमुच्चसि ।

पुरिसा !

सच्चमेव समभिजाणह ।
मच्चस्स आणाए उवट्ठिए-
भेहावी मार तरइ,
महियो धम्म-मायाय मेय
ममणुपस्सइ ।

॥ २ ॥

आवर्त्त

“धीरो मुहुत्तमपि णो पमायए
वञ्चो अञ्चेइ जोवण च”





(१)

इन्द्रियों के विषय को ही ससार कहत हैं और ससार ही इन्द्रियों का विषय है ।

अर्थात् इन्द्रिय विषयों की आभक्ति ही ससार है ।

(२)

जो विषयभोग हैं, व ही ससार क मूल रजान हैं, जो ससार के मूल रजान हैं वे ही विषयभोग हैं । जो विषय-लोलुप होता है वह विषयाधीन तथा प्रमादी होने के कारण बार-बार दुःख भोगता रहता है ।

वह प्राणी, मेरी माता, मेरे पिता, मेरा भाई, मेरी बहिन, मेरी स्त्री, मेरे पुत्र, मेरी पुत्री, मेरी पुत्रवधू, मेरे मित्र, मेरे सगे सम्बन्धी, मेरे परिचित, मेरे भोग विलास के साधन, मेरी संपत्ति, मेरे खान पान तथा वस्त्र इत्यादि अनेक भूतों में फँसा रहता है और असावधान रहकर निरंतर हिंसा करता रहता है । दिन-रात आसक्त रहता है । समय तथा असमय का भी ध्यान नहीं रखता । कुटुम्ब-परिवार तथा धन के मोह में फँसा रहता है । विषयासक्त होकर जिना किमी भय के लूट-मार तथा प्राणियों की हिंसा करने लगता है । विवेकशक्ति को खो बैठता है तथा सदा ऐहिक भोगों में लीन रहता है ।

(१)

जे गुणे से आवड्ढे ।

जे आवड्ढे से गुणे ।

(२)

जे गुणे से मूलद्राणे

जे मूलद्राणे से गुणे ।

इति से गुणद्वी महया परियारेण

पुणो पुणो वसे यमत्ते ।

माया मे, पिया मे, मारा मे, भइणी म,

भजा मे, पुत्ता मे, मूया मे, एदुसा म,

सहि सयण-भगव-मधुया मे,

विवित्तुवगरण-परिवहण भोयण-च्छायण मे ।

'इच्चत्थ गणिए लोए' उसे यमत्ते ।

अहो य राओ परितप्पमाणे जाला-जाल-ममुद्धाई

मज्जोग्घी 'पत्थालोमी आलु पे सहसामारं

विनिजिद्ध चित्ते 'एत्थ सन्धे' पुणो पुणो

(३)

यही नीच अनेक बार उच्च गोत्र में जन्म ले चुका है और अनक बार नीच गोत्र में। इस लिए न कोई हीन है और न कोई उँच। अत उच्च गोत्र आदि मन्स्थानों की इच्छा भी न करनी चाहिए। इस बात पर विचार करने के बाद भी कौन अपने गोत्र का द्विगोरा पीटेगा ? अथवा अभिमान करेगा ? वह किस बात के लिए मोह करेगा ? इसलिए न तो हर्ष करना चाहिए और न प्राय ही।

(४)

जो व्यक्ति क्रोध करता है वह मान भी करता है और जो मान करता है वह माया का भी सेवन करता है। जो माया का सेवन करता है वह लोभ भी करता है और जो लाभ करता है वह त्रिद्विपया से स्नह भी करता है। जो स्नह करता है वह द्वेष भा करता है। जो द्वेष करता है वह मोह म भी फँसता है ना मोह म फँसता है उस गम भी देखना पड़ता है। जो गम उखता है उसका नाम भी हाता है। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी होती है। जिसकी मृत्यु हाती है उस नरक भी देखना पड़ता है। जो नरक देखता है वह तिर्यच गति म भा जा सकता है, उस दुःख भा देखने पड़ते हैं।

इस लिए जुद्धिमान् क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, गर्भ, जन्म, मृत्यु, नरक गति, तिर्यच गति और दुःख सभी म दूर रहे।

महा जीवा पर त्या करन वाले ससार के पारगामा सर्वदर्शी भगवान का यही सिद्धांत है।

(३)

से असह उच्चा-गोए अमह नीया-गोए
 नो हीणे, नो अहरित्ते नोऽपीहण
 इह सखाए वो गोययाई ? रा माणवाइ ?
 कमि वा णा गिज्जे ? तम्हा नो हरिमे नो कृप्ये ।

(४)

जे कोह-दसी से माण-दसी, जे माण-दमी से माया-दमी,
 जे माया-दमी से लोभ-दमी, जे लाभ-दमी से पिज्ज-दमी,
 जे पिज्ज-दमी से दोग-दमी, जे दोग-दमी से माह-दमी,
 जे माह-दमी से गम्भ-दमी, जे गम्भ-दमी से जम्म-दमी,
 जे जम्म-दमी से मार-दमी, जे मार-दमी से नरय-दमी,
 जे नरय-दमी से तिरिय-दसी, जे तिरिय-दमी से दुक्क-दमी ।

म महावी अभि णि-वट्टेज्जा—

कोह च माण च माय च लोह च

पिज्ज च दोग च माह च गम्भ च

जम्म च मार च नरय च तिरिय च दुक्क च

ण्य पासगस्स दसण उवरय-भत्थस्स पलियत-परस्स ।

(३)

यही जीव अनेक बार उच्च गोत्र में जन्म ले चुका है और अनेक बार नीच गोत्र में। इस लिए न कोई हीन है और न कोई उँच। अतः उच्च गोत्र आदि मद्स्थाना की इच्छा भी न करनी चाहिए। इस बात पर विचार करने के बाद भी कौन अपने गोत्र का ढिंढोरा पीटेगा ? अथवा अभिमान करेगा ? वह किस बात के लिए मोह करेगा ? इसलिए न तो हर्ष करना चाहिए और न क्रोध ही।

(४)

जो व्यक्ति क्रोध करता है वह मान भी करता है और जो मान करता है वह माया का भी सेवन करता है। जो माया का सेवन करता है वह लोभ भी करता है और जो लोभ करता है वह इन्द्रियविषया से म्मह भी करता है। जो स्नेह करता है वह द्वेष भी करता है। जो द्वेष करता है वह मोह में भी फँसता है जो मोह में फँसता है उसे गर्भ भाँ देखना पड़ता है। जो गर्भ देखता है उसका जन्म भी होता है। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी होती है। जिसकी मृत्यु होती है उसे नरक भी देखना पड़ता है। जो नरक देखता है वह त्रियच गति में भी जा सकता है, उस दुःख भी अपने पड़ने हैं।

इस लिए बुद्धिमान क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, गर्भ, जन्म, मृत्यु, नरक गति, त्रियच गति और दुःख सभी से दूर रहें।

सभी जीवों पर क्या करन वाला सत्तार के पारगामी सर्वदर्शी भगवान का यही मिष्ठान्त है।

(५)

एग विगिंचमाखे पुढो विगिंचइ
पुढो विगिंचमाण एग विगिंचइ

(६)

जीविए इह जे पमत्ता—

से हता, छेत्ता, भेत्ता, लु पिता
मिलु पिता, उदवेत्ता उतासइत्ता
'अरुइ करिस्सामि' ति मन्नमाणे ।

जेहिं वा सद्धिं भवसति ।

ते वा थ एगया थियगा पुढ्वि पोसति
सो वा ते थियगे पच्छा पोसेज्जा
थाल ते तन ताथाए वा सरथाए वा
तुम पि तेसि थाल ताथाए वा सरथाए वा ।

(५)

जो व्यक्ति एक अनन्तानुबन्धी प्रकृति का ज्ञय कर देता है वह दूसरी प्रकृतियों का भी ज्ञय कर डालता है। जो दूसरी प्रकृतियों का ज्ञय करता है वह अनन्तानुबन्धी का भी अरथ्य ज्ञय करता है।

(६)

जो लोग जीवन के इस रहस्य पर ध्यान नही देते वे अज्ञान तथा मिथ्याभिमान से प्रेरित होकर ग़मे कार्या को करना चाहते हैं जिन्हें उनकी दृष्टि में किसी ने नहीं किया। वे सासारिक सुखों के लिए प्राणियों को मारते हैं, काटते हैं, छूटते हैं, भेदते हैं तथा विभिन्न प्रकार से त्रास देते हैं। फिर भी उनकी इच्छा पूरी नहीं होती। वे जुटुम्ब का पोषण करने के लिए सब जुद्ध करते हैं। किन्तु उनके अपने पोषण का भार भी जुटुम्ब को उठाना पड़ता है। यदि किसी प्रकार जुद्ध प्राप्ति भी हो जाती है और वे जुटुम्ब का पोषण भी करने लगते हैं तो भी जुटुम्बों में से कोई भी उनको नहीं बचा सकता है, न शरण दे सकता है तथा वे भी न उन्हें बचा सकते हैं और न शरण दे सकते हैं।

(७)

अयोग-चित्ते रालु अय पुरिसे—
 से केयण अरिहत्तए पूरित्तए
 से अन्नमहाए अन्न-परियापाए
 अन्न-परिग्गहाए, जणवय-वहाए
 जणवय-परियापाए, जणवय-परिग्गहाए

(८)

अहो य राथो परितप्पमाणे
 काला-काल-समुट्ठाई सजोगट्ठी अत्थालोभी
 आलुपे महम-वमारे विणिमिद्ध-चित्ते
 एत्थ सत्थे पुणो पुणो ।
 से आय-बले, से नाइ-बले, से मिच्च-बले,
 से पिच्च-बले, से देव-बले, से राय-बले,
 से चोर-बले, से अतिहि-बले, से क्खिविण-बले, से समण-बले,
 इत्थेएहि विरुण-रूपेहि कज्जेहि
 दड समायाण सपेहाए भया कज्ज
 पाव-भुकरु त्ति मन्नमाणे अदुवा आससाए

(७)

मनुष्य की इच्छाएँ अनेक प्रकार की होती हैं। वह चलनी म समुद्र भरना चाहता है। वह दूसरों का वध करता है, उन्हें दुःख देता है तथा उन पर अधिभार जमाना चाहता है। वह बड़े बड़े भूखण्डों का नाश कर डालता है, सारे देशवासियों को कष्ट पहुँचाता है तथा उन पर आधिपत्य जमाना चाहता है।

(८)

अज्ञान पुरुष दिन रात दुःखी होता रहता है। उसे समय असमय का ध्यान नहीं रहता। वित्त और वनिता की प्राप्ति के लिए भटकता रहता है। हिंसक तथा क्रूर बन कर विवेक-बुद्धि खो बैठता है। बार-बार शस्त्र अर्थात् जीव हिंसा के कार्य करता रहता है। आत्म बल, जातिबल, मित्र बल, प्रेत्यबल, देवबल, राजबल, चोरबल, अतिथिबल, कृपण बल, श्रमणबल आदि विविध प्रकार के बलों की प्राप्ति के लिए वह तरह-तरह के हिंसात्मक कार्य करता रहता है। पाप का ज्ञान अथवा परलोक में सुख प्राप्ति की आशा से भी अज्ञान जीव आरम्भ समारम्भ करता रहता है।

† परलोक में होने वाला बल। अथवा भूत, प्रेत और भवानी आदि का बल।

(६)

* उवाड्य-भेमेण वा सनिहि-भनिचयो क्रिजइ
इह एगेसि असनयाण भोग्याए ।

तयो से एगया रोग-ममुप्याया ममुप्यजति
जेहिं वा सिद्धि मवसइ—

ते मा ण एगया नियगा त पुच्चिं परिहरति
सो वा ते नियगे पच्छा परि-हरेजा
नाल ते तव तायाए वा सरणाए वा
तुम पि तेसि नाल तायाए वा सरणाए वा ।

(१०)

त परिणाय मेहारी—

नेर सय एएहिं कजेहिं दड समारभेजा
नेव अन्न एएहिं रुजेहिं दड समारभाविज्जा
एएहिं कजेहिं दड समारमत अन्न न समणुजाणिजा
एस मग्गे थारिएहिं पवेइए
जहेत्थ कुसले नोवलिपिजासि-

त्ति वेमि

(६)

बहुत म असयमी बच हुए भोजन को दृमरे दिन खाने क लिए रग छोड़ते हैं । किन्तु समय पाकर उमी भोजन के कारण गनक शरीर म अनेक प्रकार क रोग उत्पन्न हो जाते हैं । उम समय गनके आत्मीय, चिनर साथ यह चिर-शाल से रह रहा हे, उसे छोड देते हैं, अथवा उस रय हो स्पनता को छोड देना पड़ता हे ।

ओ जीव ।

व स्पनत न तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं, न तुम्ह शरण दे सकते हैं । और तुम भी न उनकी रक्षा कर सकन हो, न उन्हें शरण दे सकत हो ।

(१०)

यह जानकर बुद्धिमान मनुष्य इन कार्या क लिए न रय हिंसा करे, न दूसरों का प्रेरित करे और न हिंसा करन वाले का अनुमोदन ही करे । यह मार्ग श्रेष्ठ पुरुषा द्वारा यथाया गया हे ।

हे कुशल ।

इन पापकार्या म कभी लिप्त मत होना ।

(११)

जेहि सिद्धि सवसइ—

ते पि ण एगया खियगा पुव्व परिच्चयति,
 सो वा ते खियगे पच्छा परिच्चयत्ता
 खाल ते तव तायाए वा सरयाए वा
 तुमपि तेसिं खाल तायाए वा सरयाए वा
 मे ण हासाए ण ऋडाए ण रतीए ण विभूसाए ।

(१२)

जमिण विरुव-रूहेहि सत्थेहि

लोगस्स कम्म समारभा कज्जति

तन्हा—

अप्पयो से पुत्ताण, धुयाण सुण्हाण,
 नाईण धाईण राईण दासाण
 दासीण कम्म-कराण कम्म करीण
 थाएसाए पुढो पहेयाए सामासाए,
 पाय-रासाए सनिहि-सचओ कज्जइ,
 इह-मेगेसि माणवाण भोययाए ।

(११)

रह निरन्तर साथ रहता है वे आत्मीय ही वृद्धावस्था में उसरी निन्दा करने लगते हैं, अथवा यह स्वयं अपने कुटुम्बियों की निन्दा करने लगता है। इसलिए हे जाग ! कोई भा तुम्हें बचाने वाला अथवा शरण देने वाला नहीं है और नू भी किसी को बचाने या शरण देने की सामर्थ्य नहीं रखता। वृद्धावस्था न मनुष्य हूँसी, खेल, भोग-विलास, शृङ्गार, आदि किमी के योग्य नहीं रहता।

(१२)

मनुष्य, लोक व्यवहार के लिए विविध प्रकार के शास्त्रों में दिसा करते हैं। अपने पुत्र, पुत्रा, पुत्रशुभ, स्वजन, धाय, राजा, दाम, दामी, नौकर, नीरराना, अतिथि, आदि का भेजने के लिए या सायंकाल अथवा प्रातःकाल के भावन के लिए षट्ठ से मनुष्य तरह तरह की सामग्री जुटाते हैं।

(१३)

अप्य च सलु आउय इहमेगेमि माणनाण तजहा—

सोय परिण्णाणेहि परिहायमाणेहि

चन्सु परिण्णाणहि परिहायमाणेहि

घाण-परिण्णाणेहि परिहायमाणेहि

रस परिण्णाणेहि परिहायमाणेहि

कास परिण्णाणहि परिहायमाणेहि

अभिवस च सलु वय मपेहाण

तयो से एगया मूढ भाव जणयति ।

(१४)

जाव—

सोय परिण्णाणा अपरि हीणा

नेत्त परिण्णाणा अपरि हीणा

घाण-परिण्णाणा अपरि हीणा

जीह परिण्णाणा अपरि हीणा

करिस-परिण्णाणा अपरि-हीणा

इच्चेहि विरुव-रूणेहि पण्णाणहि अपरिहीणेहि ।

आयड्ड सम्म समणुवासिज्जासि ।

(१३)

मनुष्या का जीवन अल्प है। श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन
 इंद्रिया की शक्ति ऋ क्षीण हो जाने पर मनुष्य अपनी आयु
 क्षीण होती देखकर व्याकुल हो उठता है।

(१४)

जब तक श्रोत्रेन्द्रिय का श्रवणशक्ति, चक्षुरिन्द्रिय की दशन
 शक्ति, घ्राणन्द्रिय की घ्राणशक्ति, रसनेन्द्रिय की स्वादशक्ति
 और स्पर्शनेन्द्रिय की स्पर्शशक्ति क्षीण नहीं हुई है, तथा जब तक
 विविध प्रकार की ज्ञान शक्तियाँ क्षीण नहीं हुई हैं तब तक
 आत्मार्थ की सिद्धि कर लो।

(१५)

इच्चेन समुद्रिण अहो विहाराण—
 अतर च खलु इम सपेहाण
 धीरो मुहूत्त-मपि णो पमायण
 वयो अच्चेइ जोरण च ।

(१६)

त्रिज्जाइत्ता पडिलेहिता पत्तेय परिनिव्वारणं—
 सच्चोसिं ३पाणाण सच्चोसिं ३भूयाण
 सच्चोसिं ३जीव्वाण सच्चोसिं ३सत्ताण
 अस्साय अपरिनिव्वारण मह-भर दुक्ख ति वेमि
 त्तसत्ति पाणा पदिमो दित्तासु य ।

(१७)

जाणित्तु दुक्ख पत्तेयसाय
 अणभिक्त च खलु वय सपेहाण
 खण जाणाहि पडिए ।

(१) अहो विहार-सपन ।

(२) प्राण — द्वादशिन्द्रिय त्रिन्द्रिय और चतुर्दिन्द्रिय प्रसजीव ।

(३) भूत — कनस्पति के जीव ।

(४) जाव — ६-चोन्द्रिय जीव ।

(५) सत्त्व — पृथ्वी जल अग्नि और वायु के जीव ।

(१५)

इस प्रकार धीर पुरुष बड़े और सयमानुष्ठान के लिए अक्सर आया देख कर क्षुण्ण भरी भी प्रमाद न करे। यौवन और आयु नाशर हैं।

(१६)

प्रिय शिष्य !

गम्भीर विचार तथा परमज्ञान के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि समस्त प्राणी, समस्त भूत, समस्त जीव तथा समस्त मत्त्व दुःख से घबराते हैं। सभी के लिए कष्ट दुःखदायी, अशांति कर तथा महाभय स्वरूप हैं। दुःख से डरकर प्राणी दिशा तथा विदिशाओं में भागते रहते हैं।

(१७)

हृ पण्डित !

सुख और दुःख प्रत्येक प्राणी को सहने पड़ते हैं तथा अत्र ना आयु शेष है इस बात का विचार करके अक्सर मैं पण्डितान् । इसे मत भूल ।



३

म हा वी थि

से हु दिट्टभए मुणी,
लोगसि परमदसी विवित्त-जीवी
उवसते समिए सहिए सया जए
काल-कखी परिव्वए ।

(१)

अश्वगारे उज्जु-कडे निशाय-पडिअण्ये
असाय कुत्रमाखे मियाहिण ।

जाए सद्धाए निमखती तमेव अश्वपालिजा
वियहिता ,रित्तोत्तिय पयया वीरा महावीहि ।

(२)

मिमुत्ता हु ते जणा —

जे जणा पारगाभिखो
लोभ-मलोभेय दुगु धमाखे
लद्वे कामे नाभिगाइइ ।

(३)

दिशावि लोह निवरुम्म एस अकम्मो
जाखइ पासइ पडिलेहाए नावन्सइ
एस अश्वगारि ति पवुच्चइ ।

(४)

समुद्धिए अश्वगारे आरिए आरिय-पन्ने
आरिय-दस्ती 'अय सन्धि' ति अदकुरु ।
से नाईए नाइयावए न समणुजाणइ
सञ्चाम-गध परिचाय निराम-गधो परिच्चए ।

(१) निशाय = मोघमार्ग

(२) विलोतिका = शका

(१)

जो सरल है, मुमुक्षु है और माया रहित है वही अनगार है। मनुष्य जिस श्रद्धा से गृह त्याग करे, उस पर सदैव स्थिर रहे। वसमें किसी प्रकार की शका न करे। वीर पुरुष इसी महामार्ग पर चलते हैं।

(२)

जो लोग काम भोगों को छोड़कर ज्ञान दर्शन आदि को प्राप्त करते हैं वे ही वास्तव में मुक्त हैं। वे सन्तोष के द्वारा लोभ पर विजय प्राप्त कर लते हैं और अनायास प्राप्त हुए काम भोगों की ओर भी नहीं झुकते।

(३)

जो महापुरुष लोभ का निर्मूलन करके सयम अंगीकार करते हैं वे अनगार कहे जाते हैं तथा शीघ्र ही कर्मा का नाश करके सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी बन जाते हैं।

(४)

सयम के लिए उद्यत आर्य, आर्यप्रज्ञ तः ऽ आर्यदर्शी अनगार विविध प्रकार की समाचारी के समय का ध्यान रखता है। वह दोष वाली वस्तुओं को न स्वयं स्वीकार करता है, न दूसरों को लेने के लिए कहता है और न लेने वाले को अन्ध्रा ही समझता है। सभी प्रकार के सदाप और दुर्गन्ध वाले आहार को जानता है किन्तु निर्दाप आहार का ही सेवन करता हुआ विचरता है।

(५)

अदिस्ममाणे कुर-विक्कयेसु—
 से न क्खिणं, न सिक्खामए, सिक्खत न समणुजाणइ
 ने भिक्खुं कालत्ते, उलत्ते, मायत्ते, सेयत्ते,
 खण्णत्ते, पिरायत्ते, स-समय-परममयत्ते,
 भावत्ते, परिग्गह अममानमाणं कालाणुड्ढाई अण्डिएणे ।

(६)

दूहथो धत्ता निथाइ,
 उत्तं पडिग्गहं कल्लं पायपुं छण,
 उग्गहणं च उड्ढामणं
 णण्णुं चेत्तं जाणित्ता ।

(७)

सद्धं आहारं अयमारो मायुं जायेज्जा
 न उट्ठय मगरया पसेइय ।

(५)

भिन्नु ऋय विक्रय में कभी नहीं पड़ता । वह न तो स्वयं खरीदता है, न दूसरे को खरीदने के लिए रुकता है और न खरीदने वाले का अनुमोदन ही करता है ।

भिन्नु अक्सर को जानने वाला, आत्म शक्ति को पहिचानने वाला, भोजन की मात्रा को जानने वाला, विविध कार्या में होने वाले परिश्रम तथा उनके लिए उचित समय के ज्ञान वाला, ज्ञान दर्शन आदि विनय का जानकार, स्वसिद्धान्त तथा परसिद्धान्त का विद्वान् तथा भागों का ज्ञाता होता है । वह परिग्रह से ममता नहीं करता । समय देखकर कार्य करता है । वह कामनाओं की पूर्ति के लिए सकल्प नहीं करता ।

(६)

भिन्नु राग और द्वेष को नष्ट करके सयम माग में विचरण करता है। वस्त्र, पात्र, कन्वलपाद प्रोद्घन, अग्रमह, चटाई आसन आदि के विषय में भी वह समभाव रखता है ।

(७)

भगवान् के द्वारा धृतये गये आहारादि के परिमाण का ज्ञान-मुनि को होना चाहिए ।

(८)

लाभो-त्ति न मज्जेज्जा,
अलाभो त्ति न सोइज्जा ।

वहु पि लद्धु न निहे ।

परिग्गहाओ अप्पाण—

अव-सक्केज्जा ।

(९)

पत लूह सेरति—

वीरा सम्मत्त-दसिणो ।

एम ओहत्तरे मुणी—

तिन्न मुत्ते पिए पियाहिए ।

(१०)

एस मरणा पमुच्चइ—

से हु दिट्ठमए मुणी लोगति परमदसी, विवित्त-जीवी,

उपनठे, * समिए, सहिए, सया जए काल-कखी परिव्वए ।

समित्त —स मतिशो का पालन करने वाला । समिति-सय का निरूप पालन करने के लिए तथा हिंसा से बचने के लिए बनाए गए साधु-गानों रखने के पंच नियम (१) ईशानसमिति —रखन सत्य साधु-गानों रखना । (२) भाषा समिति — गेजने न साधु-गानों रखना । (३) एसण समिति —भिन्न वृत्ति में साधु-गानों रखना । (४) ध्यान निक्षेपण समिति —किसी भी वस्तु का उठाने और रखने में साधु-गानों रखना । (५) परिष्कारण समिति —सुद सका दाप सका आदि के लिए जीव जन्तु रहित योग्य स्थान देखना तथा उठाने साधु-गानों रखना ।

(८)

साधु आहार क प्राप्त होने पर मद न करे । न मिलने पर शोक न करे । अधिक प्राप्त होने के लिए व्याकुल न हो । मदा अपन आपको परिग्रह से दूर रखे ।

(९)

सम्यक्त्व पर दृढ रहन गले मुनि वचे-खुचे और करे आहार का सेवन करते ह । ऐसे ही मुनि भय सागर के पार उतरते हैं । व ही उत्तीर्ण जीवन्मुक्त तप्रा विगत बहे जाते हैं ।

(१०)

तो मुनि ससार क भय को जानता है, वही मृत्यु से डुटकारा प्राप्त करता है । वह ससार म एक मात्र मोक्ष रूप परम तत्त्व को रखता है, एकान्त में रहता है, स्वभाव से शान्त होता है, समितिया का पालन करता है, धानादि गुणों म युक्त हाता है, मदा इन्द्रियों को वश म रखता है । साधु को मृत्यु के लिए तयार रहकर विचरण करना चाहिए ।

(११)

से बतता कोह च माण च माय च लोभ च ।

एम पामगस्स दसण ।

उवरय-मत्थस्स पलियत-क्कस्स त्रायाण मगडन्नि ।

(१२)

सीओसण च्चार्ड से निग्गथे

अरड-रडसहे फरमिग नो वेएइ ।

जागर-वेरोपरए वीरे एव दुक्खा पभोक्खमि ।

(१३)

अयाणाए पुडा नि एगे नियट्ठति मदा मोहेण पाउडा ।

अपरिग्गहा भविस्सामो समुट्ठाय लद्धे ऋमे अभिगाहड ।

अयाणाए सुणियो पडि-लेहति, एत्थ मोहे पुणो पुसो

मन्ना नो हव्वाए नो पारए ।

(११)

ज्ञानादि गुणा मे युक्त मुनि क्रोध, मान, माया और लज्जा
 ११ वमन [त्याग] कर देता है । ससार क स्वरूप को खेन वाद
 हिंसा के पूण त्यागी, मसारना अन्त करने वाले भगवान् का वा
 मिद्वान्त है । जो दयति कर्मा के आगमन को रोक दता है इह
 १० कर्मा से भी भाग ही नष्ट कर डालता है ।

(१२)

मुनि मुख और मुख की परवाह नहीं करता । प्रकृत और
 अनुकूल सभी बातों को समान रूप से महता है । प्रकृत कृपा
 मयम की कठोरता पर ध्यान नहीं देता, मया जान्क हा है ।
 रैर विरोध से दूर रहता है । उहा पार है, वाद नून दुःकारा
 गत करता है ।

(१३)

अज्ञानी जाव परीपह या उपसर्ग आने पर नान्न च आत्मा का
 उल्लघन करत हैं और मयम से भ्रष्ट हा गत हैं । कुछ लोग नाचा
 नेकर भी मुनि के वेश को लजात हैं । वग्न दुष्काम भोगों का
 तेजन करत हैं । फिर भी अपन च गत्यहा कहत रहते हैं ।
 प्रच्छदता पूर्ण चारा आर काम भागों च दूत रहते हैं ।
 अत्यंत मोह म डूबे रहते हैं, अत वन दय क रहते हैं
 उधर के ।

(१४)

दुव्वसु मुणी अणाणाए,
 तुच्छण गिलाइ वत्तण ।
 एस वीरे पससिए,
 अच्चेइ लोय-सजोग
 एस नाए पपुच्चइ ।

(१५)

अन्नहा ण पामए परि-हरेज्जा
 एस भग्गे यायरिएहिं पवेइए
 जहित्थ कुसले नोव लिपिज्जासि ।



(११)

भगवान्‌का आज्ञा के विपरीत चलन वाला मुनि दुर्गमु अर्थात् भोट सिक्के के समान होता है। वह ज्ञान दर्शन आदि सम्पत्ति से शून्य होता है। वह मालता हुआ लताता है। इसके विपरीत भगवान्‌की आज्ञा में चलने वाला वार रुहा जाता है। उसकी प्रशंसा हाता है। वह मसार चक्र को पार कर जाता है। यही सन्मार्ग रुहा गया है।

(१५)

साधु, परिषद्‌को अपने मे अलग समझकर छोड़ दये। यह माग पूर्वाचार्या द्वारा उताया गया है। इस माग म चलने वाला बुद्धाल व्यक्ति पापा म लिप्त नहीं होता।





: ४ :

हे मुनि-वर !

का अरु के आणदे ?
इत्य पि अग्गहे चरे ।
सव्व हास परिच्चज्ज,
आलीण-गुत्तो परिव्वण ।



(१)

सहै फासे ग्रहियासमाणे, निर्विद नदि इह जीवियस्स ।
मुणी ! माण समायाय धुणे रुम्म-सरीरग ।

(२)

उपवाय चवण नचा, अणण चर माहणे ?
मे न छणे छणावइ, छणत नानु-जाणइ ।

(३)

खिच्चिद खदि अण पयासु,
अणोम-दसी खिसन्नो पाणेहि कम्मोहि ।

(४)

सोहा-द-माण इणियाय वीरे !
लोभस्स पासे निरय महत्त ।

तम्हा य वीरे विरए वहाओ,
छिदिज्ज सोय लहु-भूय-गामी ।

(१)

ह मुनिवर !

अनुकूल तथा प्रतिकूल शब्द, स्पर्शादि को समान भाव से नष्टन करत हुए सामारिक भोगा से प्राप्त होने वाली मनस्तुष्टि से मदा दूर रहा । समय का अवलम्बन करके कर्म शरीर (कर्मण शरीर) को आत्मा से अलग करो ।

(२)

मुनिवर !

जन्म और मरण को जानकर ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप वाच मार्ग पर विचार करो । न किसी जीव को स्वयं मारो, न मारन क लिए कहो और न मारन वाल का अनुमोदन ही करो ।

(२)

मुन !

इन्द्रिय विषया क आनन्द म घृणा करो । स्त्री आदि म रति छाड़ दो । हृदय म उच्च भावनाओं से स्थान दो । मभा पाप कर्मा से अलग रहो ।

(३)

ह धीर !

क्रोध, मान आदि कषाया का नाश करा । लाभ क भयकर परिणामा पर विचार करो । यदि कर्मा क नाश द्वारा नार रहित बनकर मोक्ष प्राप्त करना चाहत हो तो हिमा से अलग होकर कम-धर्म के नाश को रोका ।

(५)

गथ परिणयान् इह'ऽञ्ज धीरे !

मोय परिणयान् चरिञ्ज दत्ते ।

उम्मञ्ज लद्दु इह माणनेहि,

नो पाणियण पाणे समारभिञ्जा ।

(६)

अण्णन-परम नाखी,

नो पमाणे कयाइवि ।

आय-गुत्ते सया धीरे,

जाया-माया-इ जाणए ।

(७)

का अरइ ? के आणदे ? इत्थ पि अग्गहे चरे,
सच्च हास परि-चञ्ज, अल्लीण-गुत्तो परिच्चए ।

(५)

आ धार पुरुष ।

कर्म बंध की गाठ को पहिचान । आज ही से पाप करना छोड़
 २ । इन्द्रियों को कम-बन्ध का म्नात जान कर उनका दमन कर ।
 मयम रूप नौका को प्राप्त करके ससार सागर में अपना उद्धार
 कर और प्राणीओं का बंध करना छाड़ दे ।

(६)

ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह समय को सर्वात्कृष्ट मानकर
 कभी उसमें प्रमाद न करे किन्तु धीरे-धीरे सत् आत्मा को
 सुरक्षित रखे और आहार आदि की मात्रा का ध्यान रखकर
 समय मार्ग की निरंतर यात्रा करे ।

(७)

माधु ।

न्या अरति । और क्या आनन्द । इन सब बातों से निर्लिप्त
 रहकर विचरा । हास्य आदि † नोरुपाय तथा * कपायो को छोड़
 कर इन्द्रियों को बश में रक्खा और तीनों योगों पर नियंत्रण रख
 कर समय का पालन करो ।

† हास्य, उति, अरति, नय शोक, जुगुप्सा स्त्रीवद, पुरुषवद, नपुंसकवद
 यही नोरुपाय है ।

* कप, मान, माया आदि लालच । चार कषाय हैं ।

(८)

सहिए दुखर-सत्ताए पुडो नो भूमाए,
पामिय दणिए लोगा-लोग परचाओ मुचइ ।

(९)

ममय तत्थुवेहाए अण्णाए विप्पसायए
जमिण अन्न-मन्न वित्तिगिच्छाए
पडिलेहाए न करेइ पाप कम्म,
किं तत्थ मुणी कारण सिया ।

(१०)

से त जाणह-नमह वेमि ।
तेइच्छ पडिए पवय-माणे ।
मे हता छित्ता भित्ता लु पडत्ता
मिलु पइत्ता उद्वइत्ता
अरूढ करिस्सामि त्ति मन्नमाणे
जस्स वि य ण करेइ,
अल गालस्स पमगेण
जे वा से करेइ गाले
न एव अण्णगारस्म नायइ ।

(८)

ज्ञान दर्शन आदि गुणों से युक्त मुनि किसी प्रकार का दुःख
आन पर न घबरावें । इस बात को ठीक समझ कर मुमुक्षु प्राणी
लोक अलोक के प्रपञ्च से दूर जाता है ।

(९)

मन्त्री प्राणियों में समभाव रखता हुआ मुनि आत्मा को
मयम द्वारा प्रसन्न करे । जो व्यक्ति भय, लज्जा या दिम्बाये क लिए
पाप कम का द्रोहता है क्या वह मुनि हो सकता है ? मुनि तो
वही हो सकता है जिसके मन में हिंसात्मक विचार भी नहीं आते ।

(१०)

हे साधुओं !

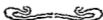
इसलिए तो मैं कहता हूँ, मैं जानो । जो साधु अपने को फलित
मानकर काम चिकित्सा का उपदेश देता हुआ नीच हिंसा में बल
रहता है वह नीचों को मार्गता, मनका छत्र भेदन करता है
उन्हें विविध प्रकार में हैरान करता और प्राणान्तरक करता है
चाता है । वह यह अभिमान करता है कि मैं तुम्हारे अज्ञान
सर्व करके दिग्गङ्गा । जिसकी वह चिकित्सा करता है उसे
हिंसा म प्रवृत्त कर देता है । ऐसे अज्ञान का नाश करने
चाहिए । वह निम क्रिया को करने के लिए करता है उसे
करनी चाहिए क्या कि अनगार से इस प्रकार के अज्ञान का उप-
देश देना अपने मित्रों के विपरीत है ।

(११)

एम पस्त मुणी ! महच्चभय नाइ-वाइजा कचण ।
 एस रीरे पससिण वे न नि विज्जइ आयाणाए ।
 न म देइ न कुप्पिज्जा क्षोर लद्धुं न खिसए ।
 पडि-सेहियो परिणामिज्जा,
 एय मोण समणुवासिज्जासि ।

(१२)

से त मबुज्जकमाणे आयाणीय
 ममुट्ठाय तम्हा पाव-कम्म नेव कुज्जा न करावेज्जा ।



(११)

मुन !

उस प्रकार हिंसा आदि को महाभय जानकर किसी को नहीं मानना चाहिए । बड़ी वार और प्रशान्त के योग्य है जो ज्ञान दान आदि मोक्ष मार्ग से निर्निगण नहीं होता । भिक्षाथ जान पर यदि कोई नहा नेता तो उस पर क्रोध न कर । थोड़ा मिलने पर निन्दा न कर । मनाहा कर देने पर शांत चित्त में लोट आओ । ह मुनियर ! तुम इसी प्रकार के मुनि व्रत का पालन करो ।

(१०)

इस बात को जान कर अन्तगार मयम मार्ग को स्वीकार कर के न स्वयं पापकर्म करे और न दूसरा से करावे ।





: ५ :

वि वे क

नत्थि कालस्स णागमो,
सव्वे पाणा पियायुत्था सुहसाया,
दुक्ख-पडिकूला अप्पियवहा पियजीविणो,
जीविउ-रामा, सव्वेसि जीविय पिय ॥

(१)

भूएहिं जाण पडिलेह माय, ण्याणुपस्सी तनहा—
 अघत्त, गहिरत्त, मूरत्त,
 मणत्त, कुटत्त, वुजत्त,
 वडभत्त, मामत्त सनलत्त,
 सह पमाण्ण अण्णो-ञ्चाओ चोणीओ मधेह
 विस्स-स्स फामे परि-म-वेएइ ।

(२)

इण्णमेव नावग्गति, जे जणा धुव-चारिणा ।
 जाइ-मरण परिन्नाय, चरे मग्गणे दढ ॥

(३)

आयय-चक्खु लोग्गिपस्सी, लोग्गस्स अहो-भाग जाणइ,
 उद्ध भाग जाणइ, तिरिय भाग जाणइ
 गह्णि लोए अणु-परियट्टमाणे, सधि विइत्ताइह मच्चिएहिं
 एम वीर पममिए जे उट्टे पडि-मायए ।

जहा अतो तथा गहिं जहा गहिं तथा अतो
 अतो अतो पूइ-देहान्तराणि-पामह
 पुणे वि सजति पडिए पडि-लहाए

(१)

सभी प्राणियों को सुख प्रिय है—यह जानकर सभी के साथ विवस्त्रपूर्ण व्यवहार करना चाहिए । जीव अपने प्रमाद के कारण हाँ श्रुते, गहरे, गँगे, कान, ठूँठे, कुन्ड, टडे मेडे, काले, चित्तकर, आदि होते हैं तथा नाना प्रकार की योनियों को प्राप्त करते हैं । सब अनेक प्रकार के भयकर मृष्ट उठाते हैं ।

(२)

तो लाग चारित्र पर दृढ रहते हैं, व इन काम भोगा की आकांक्षा नहीं करत । इसलिए जन्म और मरण का स्वरूप जान कर समय म दृढ होकर विचरण करना चाहिए ।

(३)

जा सदा सावधान रहना है, मसार के स्वभाव को जानता है, ऊर्ध्व, अध तथा त्रियक्लोक के स्वरूप को पहिचानता है, मसार के चक्र में घूमते हुए कामामक्त लोगों को देखता है, मनुष्य लोक में ज्ञान दर्शन आदि भाव मधियों को जानकर विषयभोगा का त्याग करता है वही वीर है तथा जो कम बन्धन म फँसे हुए प्राणियों को छुडाता है, राग द्वेष आदि आभ्यतर तथा स्त्री पुत्र आदि बाह्य बन्धनों को तोड देता है वही प्रशमा व योग्य है । शरीर जिस प्रकार अन्दर से अशुचि है उसी प्रकार उसके बाह्य रूप को भी जो देख लेता है और शरीर के अन्दर दुग्धा से भर हुए तथा भिन्न-द्वारा से भरने वाले मूत्र, पुरीष आदि को भी देख लेता है, वही पंडित है ।

(४)

निया तत्य एगपर वि-प्यरा-भुगइ दसु अत्रयरम्मि कप्पइ ।
 सुहद्धी लालप्पमाण मण्ण दुत्तसग मूढ विप्परियाममुवेड,
 मण्ण विप्प-माण्ण पुढा वय प कुच्चइ,
 जमिमे पाणा पच्चहिया ।
 पडिलहाण ना नि-अरण्याए
 एम परिच्चा पमुच्चइ उम्मोवमती ।

(५)

न दुत्तस पयइय इह माणवाण,
 तस्म दुत्तसस्म उगला परिच्चमुत्ताहरति ।
 इह उम्म परिच्चाय मच्चमो ।
 न अणत-दसी मे अण्णणाराम
 जे अण्णणारामे मे अण्णतदमी ।

(६)

आरभ-ज दुत्तसमिण ति ख्या
 मां पमाई पुण्णरेड गच्च ।
 उगहमाणे मद्-रूपेसु उच्च ।
 मारा-भि-सदी मरणा पमुच्चइ ॥

(४)

सुखार्थी जीव मृत्यु के लिए हाय हाय करता हुआ पहल किसी एक आपनिवाय भी हिंसा करता है, फिर छोटे कार्यों की हिंसा करने लगता है। यह अपने ही किय हुये कर्मा के कारण दुःख भोगता है किन्तु मोह में पड़कर दूसरों को दुःख का कारण समझता है। अपने ही प्रमाद के कारण विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करता है। निम्न संसार में ये प्राणी पीड़ित हो रहे हैं, उमे जानकर प्रियमी किसी को कष्ट पहुँचाने वाले कार्य न करे। यही परित्रा है, इसीसे कम उपशान्त होते हैं।

(५)

संसार में लोगों के लिए जो दुःख प्रताप गये हैं, समझकर उन्हें श्रद्धा की तरह जानना है। उन दुःखा के कारणभूत कर्मों का जानकर जो व्यक्ति श्रद्धा प्रतीत होता है, वही मातृ-भाग के अतिरिक्त और कदा क्वचि नहीं रखता। जो मोह के अतिरिक्त रहा क्वचि नहीं रखता, वही श्रद्धा प्रतीत माना गया है।

(६)

संसार में दुःख हिंसा से उत्पन्न होता है, मायायुक्त प्रमादों को धारण करने प्रवृत्त करना पड़ता है। यह वन्म मरण के पंचड में नहीं छूटता। यह जानकर स्थाय रहित, मरत स्वभाव प्रतीत विपरीत पुरुष मनुष्य के शरीर, रूप आदि इन्द्रिय विषयों में उपेक्षा रखता है और धीरे धीरे वह मृत्यु में डूब जाता है।

(७)

आगविता एय-मदु इचयेगे ममुद्विया,
नम्हा न विहय नो मेयण गिस्मार पागिय नाखी ।

(८)

रामा दु-रति-कम्मा,
जीरिय दृष्यडि-वूडग,
राम-कामी यलु अय पुरिसे
मे मोयइ, चूरइ, तिप्पइ, परितप्पइ ।

(९)

से अयुज्जमाण हयावहए,
जाइ-मरण अणु-रि-यट्टमाणे ।

(१०)

चीविग पुणे पिग इहमेगेमि—
माखवाण खेत्त-वत्थु-ममायमाणाण
आरत्त विरत्त मण्णि-कु डल मह हिरण्यण,
इत्थियाओ परिगिज्ज तत्थेव रत्ता ।

(७)

हिंसा आदि कार्य करने के बाद भी कई भव्य प्राणी समय-समय पर चल आते हैं। भोगों का निःसार समझकर वे जानी-फिर जाना सपन नहीं करते।

(८)

भाग-मिलासों को छोड़ना अत्यन्त कठिन है, जीवन घटाया नहीं जा सकता। पुरुष सदा कामनाओं की पूर्ति में लगा रहता है। वह शोक करता है, दुःखी होता है, मर्यादा छोड़ देता है तथा अपराध करता है।

(९)

इस प्रकार की कम रचना से अतन्त्र जीव संसार में फैला रहता है, विविध प्रकार के रोगों से शरीर नष्ट हो जाता है। अपकीर्ति प्राप्त करके वह जन्म-मरण चक्र में पड़ा रहता है।

(१०)

नत्र वस्तु आदि सम्पत्ति में ममत्त्व रगन बाल मनुष्य का जीवन अत्यन्त प्रिय लगता है। फिर भाव-कर्मा के फलस्वरूप उसे मरण तथा दुःख भोगने पड़ते हैं। यदि शुभ कर्मा के कारण उस विविध प्रकार के वस्त्र, मणि, आभूषण, सुवस्त्र तथा स्त्री आदि वस्तुओं प्राप्त हो जाते हैं तो वह सदा उन्हीं में आसक्त रहता है।

(११)

न इत्थं तत्रा वा दसा वा नियमो वा दिस्मइ ।

स पुण्णं नालं जीपिउ-वामं लालप्पमाणे मूढं
विप्परियास-मुवेइ ।

(१२)

नत्तिं फालस्म शागमा ।

सत्त्वे पाणा पियाउया मुढ-मया
पिय-जीपिणो जीपिउ-वामा
मत्त्वन्नि जीपिय पिय ।

(१३)

त परि-गिज्झं दुपय चउपय अमि-जु नियाणं म निचियाणं
तिविहणं जावि से तत्थं मत्ता भवइ,

अप्पा वा गहुया वा मे तत्थं गत्तिं—चिट्ठं भोयणाए ।

तत्रा से एगया निदिह

परिमिट्टं मभूय महोचरणं भवइ ।

तपि से एगया दायाया वा विभयति,

अदत्ताहारो वा से अवहरति,

रायाणो वा म विलुपति, एस्सइ वा से, पिणस्मइ वा से,

आगार-दाहेण वा स इज्झइ ।

इयं म परस्मं ट्ठाए हूराइ कम्माइ, बालं पवुच्चमाणं

तेण दुक्कणं समूदे,

विप्परियास-मुवेइ, मुखिया हु एण पवेइण

(११)

आसक्त मनुष्य को नम लालू में तपस्या, इन्द्रिय दमन या नम पालन का कोई फल दिखाई नहीं देता। इस प्रकार गहना जान, जीवन की आकाक्षा में लगा रहता है। भोगों की तलना न फसा रहता है। तथा मोहान्ध होकर निपरीत ज्ञान गम करता है।

(१२)

मृत्यु टल नहीं सकती। सभी प्राणी दीर्घायु चाहते हैं, सुख पमद करत हैं, दुःख से घबरात हैं। उन्हें मरण अप्रिय है, जीवन प्रिय है। व सभी जीवित रहना चाहते हैं।

(१३)

सुखी जीवन वितान की आशा को मन म रखर मनुष्य व्यापार करन के लिए द्विपद चतुष्पद आदि का मचय करता है। इसक लिए वह तीन करण तथा तान योग से जुटा रहता है। उससे सका धोड़ा-सा धन प्राप्त हो जाता है, वह उसी क भोग करन में आसक्त बना रहता है।

यरा हुआ धन धीरे २ इकट्ठा हो जाता है। समय पाकर वह बहूत बढ़ जाता है फिर या तो उसे मगे-सम्यधी गॉट लेते हैं या बाकू लूट लेते हैं या राजा छान लेते हैं। वह धन किसी न किसी प्रकार नष्ट हो जाता है। इस प्रकार अज्ञान जीव दूसरों के लिए कर कर्म करता है, उसी दुःख तथा मोह से अन्धा होकर वह सदा निपरीत ज्ञान प्राप्त करता है। महामुनि भगवान् म हावीर ने यह गपदरा दिया है।

(१५)

अयस्य पुच्छि न सरति एग ।
 क्रि-मम्म तीग रि वाऽऽगमिस्म ॥
 भामति एग इह माखवा उ ।
 ज-मस्त तीय त-मागमिस्म ॥

(१५)

नाईय-मट्ट न य आगमिस्म,
 अट्ट नि-यच्छति नहागया उ ।
 निहूय-कप्प एया-णु-यस्मी
 नि-ज्झोमडत्ता ययगे महेमी ॥

(१६)

जहा पुण्यस्त कत्थइ
 तथा तुच्छस्त कत्थइ
 तथा तुच्छस्त कत्थइ
 तथा पुण्यस्त

(१५)

अज्ञान जीव भूत और भविष्य काल को भूल जाता है । वह इस गति पर भी विचार नहीं करता कि इस जीव ने मसार में कैसे भटकना पड़ता है और भविष्य में क्या दशा होगी ? कुछ यह कहते हैं कि जीव का अतीत काल जैसा रहा है वैसा ही भविष्य भी रहेगा । अर्थात् जीव सदा सुख दुःख भोगता रहेगा ।

(१५)

किन्तु तत्वज्ञानी पुरुष ऐसा नहीं कहते । ये तो कहते हैं कि कर्मा क परिणाम स्वरूप ही जीव सुख—दुःख भोगता है । इस लिए शुद्ध आचार वाला मुनि को पूर्वाक्त गति जानकर कर्मा का हित करना चाहिए ।

(१६)

यह उपदेश जिस प्रकार धनवान के लिए है उन्ही प्रकार दरिद्र के लिए भी है । निम्न प्रकार दरिद्र के लिए है उन्ही प्रकार धनवान के लिए भी है ।



॥ ६ ॥

मुक्ताहार

—
तुममेव तुम मित्त,
कि वहिया मित्तमिच्छसि ?



(१)

अखोद्वतरा एण नो य आह तरिच्चए
 अतीर-गमा एण नो य तीर गमित्तए
 अपारगमा एण नो य पार गमित्तए ।

आयागिज्ज च आयाय तम्मि टाणे न चिट्ठइ,
 पित्ह पप्प ज्ञायने तम्मि टायम्मि चिट्ठइ ।

(२)

अवि य हणे अणाइयमाण
 इत्थ पि जाण 'मय ति नत्थि
 के-य पुरिम क च नए ?

(३)

एम वीर पसत्तिए
 ज बद्धे परि मायए उड् अह तिरिय दिमासु ।
 से सच्चया मच्च-परिन्नाचारी,
 न लिप्पइ उण-पएण वीर ।

से मेहानी अणुग्घायण-स्ययने
 ज य उध-यमुक्कउमनेमी
 कुसल पुरा नो बद्धे नो मुक्के ।

(१)

हिमा का उपदेश देने वाला मर्मा प्राणा संसार में ही रहेंगे। उस तर नहीं सकते। य नीर में दूब जागे उठनी पहुँच सकत। व मन्त्र म ही रहगे, पार नहीं जा सकत। अन्व आदि सामारिक वस्तुओं प्राप्त कर लन पर ना व चान शन या मात्तमार्ग को नहीं प्राप्त कर सकते। दुःखि क काल-मन्त्र म मिश्रात् उपदेश को प्राप्त करक व म्म ने क इ है।

(२)

योग्य पात्र देखकर ही उपदेश देना चाहत। क्क क्कमा होता है कि श्रोता अपना अपमान समझ कर व क्क है। ऐसी तगह उपदेश देना भी कल्याणक है। ऐसी को जानना चाहिए कि सुनने वाला पुण्य क्क है और किन्का अपना आराध्य मानता है ?

(३)

यह नीर पुष्प प्रशंसा क योग्य वा क्क क्कने हुए प्राणियों का मुक्त करता है। यह क्क क्कने म चारों ओर मज उछ जान कर प्रवृत्त क्क क्कने म प्रवृत्त नहीं होता। वही बुद्धिमान क्क क्कने क्क को जानता है और ससार क्क क्कने क्क करता रहता है।

ऐसा कुशल व्यक्ति संसार म क्क क्कने वद्ध है और न मुक्त ही।

(४)

अरइ आउट्टे से महारी—

रखसि मुस्के ।

(५)

जे ममाइय-मइ जहाइ

से चयइ ममाइय,

से हु दिट्ट-पह मुणी

जस्म नत्थि ममाइय ।

(६)

उहेमो पासगस्स नत्थि ।

(७)

वाले पुण निहे काम-समणुएणे

अममिय दुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव

आवट्ट अणु-परियट्टइ ।

(८)

अत्थि सत्थ परेण पर

नत्थि असत्थ परेण पर ।

(१)

तुद्धिमान् पुष्प को समय में अरति न करनी चाहिए। इस प्रकार वह शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

(२)

जो ममतातुद्धि को छोड़ देता है वही परिग्रह को द्रोहता है। निम्न परिग्रह को छोड़ दिया है उसी न वास्तव में मोक्ष-मार्ग को देखा है। वही मुनि है।

(६)

तत्त्व दर्शी के लिए काइ अपेक्षा नहीं है।

(७)

अज्ञान नीच सामारिक वस्तुओं से स्नेह करता है, काम भोगों में रुचि रखता है फलतः उसका दुःख कभी शान्त नहीं होता। वह सदा दुःखी रहता है। दुःखों के ही धरे में घूमता रहता है।

(८)

प्राणियों की हिंसा के लिए एक से एक प्रकार शस्त्र विद्यमान हैं। किन्तु अशस्त्र अर्थात् अहिंमारूप समय सभी के लिए एक-सा है।

(६)

पुरिसा ।

तुममेव तुम मित्त
किं गदिया मित्तमिच्छमि ।

(१०)

दुहयो जीवियस्म -

परि-वदख-माखण-पूयणाए,
जमि एगे पमायति ।

(११)

जे एग जाणइ, से सब्ब जाणइ,
जे सब्ब जाणइ, से एग जाणइ ।

(१२)

सुव्वञ्चो पमत्तस्म भय
सुव्वञ्चो अपमत्तस्स नत्थि भय ।

(१३)

जे एग नामे से बहु नामे, जे बहु नाम से एग नामे ।
दुक्ख लोगस्स जाणित्ता, वता लोगम्म म-जोग
जति धीरा महा-जाण परण पर जति,
नायकखति जीविय ।

(६)

पुरुष !

तू ही स्वयं अपना मित्र है। तू राक्षस जगत् में मित्र क्या ढूँढता है ?

(१०)

राग-द्वेष के झगड में पड़े हुए अभागों जीव अपनी उन्दना, मायता तथा पूजा के लिए विविध प्रकार के हिंसात्मक कार्य करते हैं। बहुत से लोग इसी में पड़ जाते हैं और आत्महित में चर्चित रह जाते हैं।

(११)

जो एक आत्म रूप तत्त्व को जानता है वह सब कुछ जानता है। जो सब कुछ जानता है वह एक आत्मा को अवश्य जानता है। आत्मज्ञान और सर्वज्ञान में कोई भेद नहीं है।

(१२)

जो व्यक्ति असावधान है उसे सब ओर में भय है। जो सावधान होकर जागता रहता है, प्रमाद नहीं करता, उसका कोई भय नहीं है।

(१३)

जो व्यक्ति एक इन्द्रिय या कर्पाय पर विनय प्राप्त कर लेता है वह सभी पर विनय प्राप्त कर लेता है। जो सभी पर विनय प्राप्त करता है वह एक पर भी विनय प्राप्त कर लेता है। धीरे धीरे पुरुष ममार के दुःख को जान कर विषय भोगों की आसक्ति को छोड़ देता है। वह समयमत्प महायान के द्वारा यात्रा करता है। उत्तरोत्तर उच्च स्थान को प्राप्त करता है। वह जीवन को भी आकांक्षा नहीं करता।

(१४)

ज जाग्रि॒ञ्जा उ॒चा॒ल॒इ॒य,

त जाग्रि॒ञ्जा दू॒रा ल॑इ॒य ।

ज जाग्रि॒ञ्जा दू॒रा-ल॑इ॒य,

त जाग्रि॒ञ्जा उ॒चा॒ल॒इ॒य ।

(१५)

अ॒प्प॒म॒त्तो र॒मेहि॑

उ॒पर॒तो पा॒य-क॑म्मेहि॑

री॒रे आ॒य-गु॑त्ते मे॒ खँय॑त्ते ।

(१६)

आ॒या॒णं नि॒सि॒द्धा म॑ग॒ड॒ञ्चि॑ ।

(१७)

कि॒म॒त्थि॑ ओ॒या॒ही पा॒म॒ग॒स्म ?

न वि॒ज्ज॒इ ?

न॒त्ति॒य॒ चि॒ ये॒मि॑ ।

(१४)

तो पुरुष कर्मा का नाश करता है वही मोक्ष प्राप्त करता है,
ये मोक्ष प्राप्त करना है वही कर्मा का नाश करता है ।

(१५)

जो काम भोगों में नहीं पँसता है, पाप कर्मा से अलग रहता
है और आत्मा को पतन से बचाता रहता है । वही धीर है,
वही आत्मरक्षक है और वही निपुण है ।

(१६)

कर्मा का आगमन रोकने वाला मनुष्य पूर्णतः कर्मा अ
भा नाश कर डालता है ।

(१७)

क्या सर्वदर्शा भगवान् के भी कोटि-दण्ड में नहीं ? नहीं
है—यही मैं कहता हूँ ।



उपाध्याय कविरत्न प मुनिश्री अमरचन्द्रजी म की सम्पत्ति

आपकी आचारण मूल को लेकर लिखा गई तीना ही पुस्तकें दर्शाईं । इतना इन्द्र और श्रेष्ठ पुस्तकें लिखने के लिए हृदय के कण-कण में धन्यवाद । आकाशवाणी अथवा शैली है जो आप के व्युत्पन्न एवं शिक्षित वर्ग की जिज्ञासा को संतुष्ट करने का नृत्त कर सके । साहित्यिक क्षेत्र में आपका यह प्रथम परिचय है जो अनेक संख्य प्रमाणित हुआ है । मैं आपने एतदी सारी का यह क्षेत्र में आने के लिए सन्देश एवं सादर स्वागत करता हूँ ।”

प० वसन्तलालजी नलवाया, न्यायतीर्थ की सम्पत्ति

आचार्य शास्त्र का प्रथम पुनर्खण्ड अथवा का रक्षक है । इस रत्न को एक आनन्दन कर परिचित मुनिश्री मजुकरजा ने कतिपय रत्नों का यह सर्व-ज्ञान पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है । अग्रिम काव्य के विविध वर्णों की रचना पर बाउद्ध का तरह उत्कृष्ट ज्ञान वाता नैतिक संसार सदाना हाकर इन सच्च रत्नों के महत्त्व को समस्त संसार को आशय से किया गया मुनिश्री का यह प्रथम सहायक है । पाठ्य इन रत्नों को परख कर अध्यात्म की और प्रवृत्ति करें, यही कामना है ।

श्री शान्तिलाल वनमाली शेट की सम्पत्ति

आचार्य आनन्दराज का आत्ममूल है । इन्होंने श्री आचार्य सूर्य के अग्रजों की अनुभववाणी का गहन कर गहरा संकलन किया गया है । प मुनिश्री मजुकरजा महाराज की यह कलात्मक रचना उन आचार्य की ज्ञान धर्म व सत्य स्वातन्त्र्य और सत्य के आकाश भाषनाओं को आर आरूप करने का श्रेष्ठ है । प महागायत्री का यह अभिनव प्रथम अभिनवनीय और प्रशस्त है ।